2

वेदों का काल, पाठ प्रकार और मन्त्रों में ऋषि, छन्द और देवता विनियोग

प्रस्तावना

वेदों का महत्त्व और गौरव के विषय में वैदिक विद्वानों में यद्यपि मत समान है फिर भी, उनमें वेद के आविर्भाव काल के विषय को लेकर गम्भीर मतभेद है। वेद के आविर्भाव काल के विषय में यहां संक्षेप में आलोचना विहित है। उसके बाद वेदों के प्रक्षिप्तत्व निवारण के लिए पाठ प्रकार ऋषियों के द्वारा आविष्कृत किये गये हैं, उनके प्रकार भी बताए गये हैं। और अन्त में मन्त्रों के निरर्थकत्व आपत्तिवारण के लिए अवश्य ज्ञातव्य विषय है, ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग। वे भी यहां बताए गये है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे-

- वेद के आविर्भावकाल के विषय में अनेक आचार्यमतों के विषय में जान पाने में;
- वेदपाठ के प्रकारों को तथा उनके वैचित्र पूर्ण महिमा को जान पाने में;
- वेदों के 'ऋषिच्छन्दोदेवताविनियोग' के विषय में विस्तर से जान पाने में;
- इन वेद का समाज में एक विशिष्ट महत्त्व है जिसको जान पाने में;
- स्वय ही वेदों के काल विषय में लघुप्रबन्ध लिख पाने में।

2.1 वेदों का आविर्भावकाल

भारतीय सभ्यता का प्राचीन रूप जानने के लिए वैदिकग्रन्थों की उपयोगिता नितान्त मानी

टिप्पणी

गई है। इस सिद्धान्त के स्वीकरण में किसी विद्वान को आपत्ति नहीं है। और भी, इस वैदिक सभ्यता की ज्योति ने कभी सम्पूर्ण भारतवर्ष की पवित्र भूमि को आलोकित किया। किसी काल में ऋषियों के चित्त में आध्यात्मिक ज्ञान के दिव्य सन्देश देने की यह इच्छा जागृत हुई। कभी उनके आलोक सामान्य से गूढार्थ युक्त मन्त्र विरचित हुए। इनके प्रश्न का समुचित उत्तर आज भी कोई देने में समर्थ नहीं है, और न ही भविष्यत्काल में भी कोई देने में समर्थ होगा।

भारतीयपरम्परा में जो विद्वान श्रद्धा रखते है उनके समक्ष में तो वेद के कालनिर्णय के विषय में प्रश्न ही नही उठता है। उनकी दृष्टी में तो वेद अनादि है। वे नित्य और अपरिच्छिन्न है। परन्तु पाश्चात्यानां वेदज्ञ पण्डित और कुछ उनके अनुगामी भारतीयों की दृष्टि में वेद का आविर्भावकाल सम्बन्धी प्रश्न समाधान करने योग्य है। प्राचीन भारतीय विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते है, उनके मत में तो वेद का रचनाकाल का विचार निरर्थक है। अब कुछ पाश्चात्य विद्वान यथा बुद्धि वैभव से वेद रचना काल का निर्धारण करते है। पाश्चात्य विचारकों की जो परम्परा को जानने वाले जो भारतीय विद्वान हैं उन्होंने खोज भी की है उन्ही के मार्ग से वेदकाल का निर्णय करने का प्रयास करते है। यहां उस विषय से सम्बन्धित कुछ विचार प्रस्तुत है।

पाठगत प्रश्न

198. किनके मत में वेद अनादि है?

199. प्राचीनभारतीय विद्वान् वेदों को क्या मानते है?

200. इस समय कौन वेद रचना काल का निर्धारण कर रहे है?

2.1.1 डॉ. मैक्समूलर का मत

सर्वप्रथम डॉ. मैक्समूलर महोदय ने 1859 ईस्वी में अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास ग्रन्थ में वेदों का काल निर्णय के लिए प्रशसनीय प्रयास किया। उनके मत में वेदों में प्राचीन तम ऋग्वेद की रचना 1200 ई.पू. काल में सम्पन्न हुई। उनके मत में ऋग्वेद की रचना 1150 ई.पू. के आस पास ही हुई। मानव कल्याणार्थ इस देश में अभिनव बौद्धधर्म का उदय हुआ ये समस्त वैदिक वाङ्मय का अस्तित्त्व स्वीकार करता है। क्या इस बौद्ध धर्म के उदय से पहले ही ब्राह्मण ग्रन्थ विरचित हुए ? बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रन्थ में विवेचित विधि की कटु आलोचना करते थे। अतः बुद्ध से पहले (500 ई.पू.) ही ब्राह्मणोपनिषद् भाग उत्पन्न हो चुके थे। वैदिक साहित्य में चार युग हैं - छन्द युग, मन्त्र युग, ब्राह्मण युग, सूत्र युग। प्रत्येक युग के विकास में दो सौ वर्ष का काल माना गया है, तदनुसार बुद्ध से 600 वर्ष से पूर्व छन्द युग की सत्ता मिलती है। अतः ऋग्वेद

की रचना 1150 ई.पू. समय की बाद नहीं हुई। इस प्रकार अब ऋग्वेद के 3200 वर्ष हुए ऐसा कहा जा सकता है। डॉ. मैक्समूलर महोदय दो ऋग्वेद के उदय विषय में कुछ बिन्दुओं के आधार पर इस बात को कहा। वे स्वयं के द्वारा कहे गये वेदों के उत्पत्तिकाल निर्णय से सहमत नही थे। क्यों कि वे एकबार अपने भाषण में स्वयं ही कहते है कि इस भूतल पर कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो वैदिक मन्त्र रचना के काल को सही-सही बता सके। उन्होंने यह विचार 1889 ई.सदी में भौतिक धर्माख्यान जिफोर्ड व्याख्यान माला के प्रकट किया। और उसके बाद के उनके अनुयायी पाश्चात्य विद्वान इस तर्क के आधार पर इनके काल का निर्णय करने में प्रवृत हुए।

पाठगत प्रश्न

201. वेदों में प्राचीनतम ग्रन्थ कौन है ?

202. ऋग्वेद की रचना कब सम्पन्न हुई ?

203. वैदिक साहित्य में कितने युग है और वे कौनसे है ?

204. वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेद के कितने वर्ष हो गये ?

2.1.2 ज्यौतिष आधारित मत

वैदिक संहिताओ में ब्राह्मणों में निर्दिष्ट ज्यौतिष सम्बन्धित सूचना है। उन सूचनाओं को ध्यान में रख कर लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक और डा. याकोबी जर्मनी विद्वान् वेदों को उत्पन्न हुए 2400 वर्ष मानते है।

भारत में षड् ऋतुए होती है। ये ऋतुएँ सूर्य की गति और स्थिति पर आधारित है। ये भी प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल की अपेक्षा आज ये ऋतुएँ पीछे जा रही हैं। अर्थात् पूर्व में जहाँ नक्षत्र में जिस ऋतु का उदय होता था अब वह ऋतु उससे पहले वाले नक्षत्र में उदित होती है। प्राचीनकाल में वसन्त वर्षा के पहले तक होती थी। अत एव उसकी सुविशालता भगवद् विभूतिभाव ने गीता में कहा है कि - ''ऋतूनां कुसुमाकरः'' इति। परन्तु अब वसन्त का आरम्भ मीन सङ्क्रान्ति काल से आरम्भ होती है। मीन सङ्क्रान्ति पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होती है। ऐसी ये स्थिति नक्षत्रों के क्रमशः पश्चाद् गमन से उत्पन्न हुई है। पहले कभी वसन्त काल का आरम्भ उत्तरभाद्रपद-रेवती-अश्विनी-भरणी-कृत्तिका- मृगशिरा अनेक नक्षत्रों में थी। उससे पीछे जाने पर इस वसन्त का आरम्भ आजकल की स्थिति के अनुसार हो गया।

ज्योतिष के वेत्ता सूर्य के सङ्क्रमण वृत्त को 27 नक्षत्रों में विभक्त करते है। पूर्वसङ्क्रमणवृत्त 360 अंशों का है। और वो प्रत्येक नक्षत्र 360 ÷ 27 = 131/2 अंशों का चाप निर्मित

करता है। सङ्क्रमण विन्दु 72 वर्षों में एक अंश को छोडकर दुसरे अंश पर चला जाता है। इस प्रकार एक नक्षत्र से सङ्क्रमण विन्दु दुसरे नक्षत्र को चला जाता है। वहां 73 × 131/2 = 972 वर्षात्मक कुल काल लगता है। अब वसन्त का आरम्भ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होता है। और तब इस वसन्त का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र में होता था। उसको वर्तमान स्थिति को प्राप्त होने में 41/2 नक्षत्र पार करने होते है। यदि एका नक्षत्र पार करे तो 172 वर्ष का काल लगता है। और फिर 41/2 नक्षत्र पार करने में 972 × 41/2 = 4374 वर्षात्मक काल अवश्य अपेक्षित है। इस प्रकार वेदोक्त ज्यौतिष तत्त्व के अनुसार वेदों की 2400 ई. पूर्वकालिकता प्रतीत होती है।

पाठगत प्रश्न

205. भारत में कितनी ऋतुएँ है ?

206. वर्तमान समय में वसन्त का आरम्भ कब होता है ?

207. मीन सङ्क्रान्ति कब होती है?

208. ज्योतिर्विद सूर्य के सङ्क्रमणवृत्त को कितने नक्षत्रों में विभक्त करते है ?

209. सङ्क्रमण विन्दु कितने वर्षों में एक अंश को छोडकर दूसरे अंश पर जाता है?

210. वेदोक्त ज्योतिषतत्त्व के अनुसार वेद का रचनाकाल क्या है ?

2.1.3 शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित के मतानुसार

महाराष्ट्र के विख्यात पण्डित ज्योतिर्विद् श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित महोदय है। उन्होंने अति परिश्रम से शतपथ ब्राह्मण से महत्त्वपूर्ण एक वर्णन की खोज की। उससे उनके ग्रन्थ के रचना काल विषय में पर्याप्त प्रकाश मिलता है। वैदिक संहिताओं में नक्षत्र निर्देशक बहुत से वर्णन मिलते है। शतपथ ब्राह्मण के इस सन्दर्भ में ये कथन द्रष्टव्य है-

'एकं द्वे त्रीणि चत्वारि वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात्कृत्तिकास्वादधीत। एताहवै प्राच्या दिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वां अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यादिशश्च्यवन्ते। (शतपथ. 2/1/2)'

इससे यह प्रतीत होता है कि शतपथ ब्राह्मण रचनाकाल में कृत्तिका नियम पीछे था। आजकल ये कृत्तिका पूर्व दिग् बिन्दु से थोड़ा उत्तर दिशा में उदय होता है। दीक्षित महोदय की गणना से इस प्रकार की ग्रह स्थिति 3000 ई.पू. काल में सम्भव थी। इसीलिये वो ही शतपथ का निर्माण काल है। तैत्तिरीय संहिता शतपथ से प्राचीन है। ऋग्वेद से तैत्तिरीय संहिता भी प्राचीन है। ऋग्वेद 34000 ई.पू. काल में प्रणीत हुआ। इस प्रकार आज ऋग्वेद 4400 वर्ष से प्राचीन है।

पाठगत प्रश्न

211. श्री शङ्कर बाल दीक्षित महोदय ने एक महत्त्वपूर्ण वर्णन कहाँ से खोजा ?

212. नक्षत्र निर्देश बहुत से वर्णन कहां से प्राप्त होते है?

213. कृत्तिका नक्षत्र किस दिशा में उदित होता है ?

2.1.4 बाल गङ्गाधर तिलक के मतानुसार

तिलक के मत में वेदकाल इससे भी कुछ प्राचीन सिद्ध होता है। उन्होंने मृगशिरानक्षत्र में वसन्त काल आरम्भ के बहुत से साधक वेद वाक्यों को सङ्गृहीत किया था। तैत्तिरीयसंहिता में कहा है कि **फाल्गुनी पूर्णिमा वर्षादिः**। तिलक का यह मत अनुकूल है, क्योंकि जब पूर्णचन्द्र फाल्गुनी होता है तो सूर्य मृगशिरा में ही होता है और तभी वसंत का आरम्भ होता है। मृगशिरा में वसन्त का आरम्भ काल पूर्वोक्त कृत्तिका के काल से प्राय 2000 वर्ष पूर्व होता है। जैसे मृगशिरा से कृत्तिकापर्यन्त पश्चात् गमन में द्विसहस्र 2000 वर्षो का समय लगता है। एक नक्षत्र से दुसरे नक्षत्र तक जाने के लिए 970 वर्ष लगते है ऐसा पहले भी कहा जा चुका है। इसीलिये जिन मन्त्रों में मृगशिरा में वसन्त का उल्लेख है वे मन्त्र 4500 ई.पू. समय से अर्वाचीन नहीं हो सकते है। मृगशिरा से भी पूर्व पुनर्वसु में वसन्त के प्रारम्भ के बोधक वेदवचन तिलक को मिले। इसलिए वेदमन्त्रों को उससे भी पूर्वकाल के भी कहा जा सकता है। डा.याकोबी- जार्मानी के विद्वान् वेद के उत्पत्ति के चौबिस हजार 24000 बीत गये ऐसा मानते है। गृहसूत्रों में उल्लिखित ध्रुवदर्शन के आधार पर वो ही समय स्वतन्त्र रूप से वेदों का रचनाकाल निर्धारित करते है।

लोकमान्य तिलक के मतानुसार -

(1) अदितिकाल- 6000 ई. पूर्व से 4000 पूर्वपर्यन्त। इस काल में उपास्यदेवों के गौणमुख्य चरितादिबोधक गद्य पद्यमय मन्त्र रचित हुए, जो मन्त्र यज्ञों में प्रयुक्त होते थे।

(2) मृगशिर काल- 4000 ई.पूर्व से 2500 ई.पू. पर्यन्त। यहाँ इस महत्त्व शालिन काल में बहुत से ऋग्वेद मन्त्रों की रचना हुई।

(3) कृत्तिकाकाल- 2500 ई. पूर्व से 1400 ई.पू. पर्यन्त। इस काल में शतपथ ब्राह्मणगत तैत्तिरीय संहिता का प्रणयन हुआ।

(4) अन्तिम काल- 1400 ई.पू. से 400 ई. पूर्व पर्यन्त। इस काल में शौतसूत्र, गृह्यसूत्र, दर्शनसूत्र आदि आर्षग्रंथों की रचना हुई। उन्हीं ग्रन्थ के विरोध में प्रतिक्रियारूप में बौद्धधर्म का उदय हुआ।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

214. तैत्तिरीय संहिता में कौन वर्षादि कहा गया है ?

215. एक नक्षत्र से दुसरे नक्षत्र में गमन के लिए कितना समय लगता है?

216. वेदों के उत्पत्ति के चौबिस हजार वर्ष बीत गये ऐसा कौन मानता है?

217. लोकमान्य तिलक ने कितने काल बताये है ?

2.1.5 शिलालेख

वर्तमान में होने वाले शोधकार्यों का फल भी तिलक महोदय के मत को पुष्ट करता है। उन्नीस सौ सात ईस्वी (1907 ई.पू.) सन् डा. हूगोविन्कलर 'बोधाज् कोड्' नामक वर्तमान टर्की देश के अन्तर्गत खननकार्य में एक प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुआ। उस शिलालेख से ज्ञात होता है कि पश्चिम-एशिया के विभाजन में समय वहां टर्की देश में किन्हीं दो प्राचीन जातियों का निवास स्थान था। वहां एक जाति का नाम 'हित्तिति' और दूसरी का 'मितानि' था। इन दोनों जातियों के मध्य में राजा पारस्परिक कलह का निवारण सन्धि द्वारा करते थे। वहां संधि में दोनों पक्षों में सन्धि के संरक्षक के तौर पर देवों के नाम बताते थे। उनमें मितानि जाति के देवों में मित्र, वरूण, इन्द्र, और नासद विशिष्ट थे। ये देव आर्यों के ही थे। इससे यह प्रतीत होता है कि वहां कोई आर्य ही रहते थे।

इस शिलालेख का समय 1400 ई.पू. है। आर्य प्राग् आर्यावर्त्त में स्वधर्म वेदों को स्थिर करके कहीं चले गये। अत: 1400 ई. पूर्व से पहले ही वैदिकसभ्यता का उदय मानना चाहिए। इस प्रकार वेदों का काल 2000 ई. पूर्व सिद्ध होता है। यह काल निश्चय तिलक द्वारा दिए गये मत का समर्थन करता है। वस्तुत: ये सब अभी भी स्पष्ट नही है।

केवल माना गया है कि जब कभी भी काल निश्चय होने पर वेद पूर्वोक्तकाल से भी पूर्वकाल के है ऐसा सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

218. उन्नीससौ सात सप्ताधिकैकोनविंशतिशततमेशवीये (1907 ई.पू.) सन में 'बोधाज् कोड्' नामक वर्तमान टर्की देश में डा. हूगोविन्कलर महोदय ने कहां से और क्या प्राप्त किया ?

219. उस शिलालेख से क्या पता चलता है ?

220. टर्कीदेश में दो प्राचीन जातियों के नाम क्या थे ?

221. डा. हूगोविन्कलर-महोदय द्वारा आविष्कृत शिलालेख का समय क्या था ?

222. वेदों का काल क्या है ?

2.2 वेदपाठ के प्रकार

ऋचाओं में प्रक्षेप के प्रतिषेध के लिए वैदिक ऋषियों द्वारा विविध उपाय किये गये। चरण व्यूह ग्रन्थ में ऋचा को संख्यानुसार गिनकर रखा। फिर भी समाक्षर पद प्रक्षेप को रोकना मुश्किल था। अतः बहुत विचार कर ऋषियों द्वारा मन्त्र पाठभेद बनाए गये। मन्त्र शुद्धि रक्षार्थ इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण रचना किसी भी धर्मग्रन्थ के प्राचीन पुस्तकों में नही दिखती है। ये कुल 11 पाठ है। तीन और आठ विकृतियां है। संहिता पद क्रम पाठ प्राकृतिक है। संहितापाठ की प्रकृति से प्रकृति और पदक्रम में रूढ है।

समय के साथ प्रक्षिप्तों का प्रवेश वेदमन्त्रों में न हो ऐसा विद्वानों और ऋषियों द्वारा उपाय खोजे गये। जैसे शौनक ऋषि ने उस चरण व्यूहग्रन्थ में संहिता की सूक्त संख्या, ऋक्संख्या, पदसंख्या और कुछ समग्र संहिता की अक्षर संख्या की भी रचना की। अक्षर संख्या या पदसंख्या रचित हो, परन्तु दो-दो अक्षरों में यदि परस्पर विपरीत लिखे जाएं फिर भी अक्षर संख्या या पद संख्या समान ही होती है, इससे बचने का उपाय क्या है इसका भी ऋषियों द्वारा समाधान किया गया है। उसके निवारण के लिए वेद मन्त्रों की भिन्न रीति से पाठ की रीति खोजी गई। उनकी यह बुद्धि वर्तमान विद्वानों को आकृष्ट करती है। ऋक्संहिता में जैसा लिखित है वैसा ही सन्धि-समास द्वारा जो पाठ है वो संहितापाठ है। पाठ के ग्यारह (11) प्रकार है। उनमें तीन प्रकृतिपाठ और, आठ 8 विकृति पाठ। प्रक्रिति पाठ तीन है- 1. संहितापाठ, 2. पदपाठ 3. क्रमपाठ। और संहितापाठ दो प्रकार की योग प्रकृति है, और दूसरी दो रूढ़ा प्रकृति कहलाती है। आठ 8 विकृति पाठ है जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वज-दण्ड-रथ-घनपाठ। इनके नाम में पहले सर्वत्र क्रम शब्द कहा गया है क्रमजटापाठ, क्रममालापाठ। व्याडी मुनि ने स्वकृत जटापटलाख्य ग्रन्थ के कहा है -

जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वाः महर्षिभिः॥ इति॥

एकादश प्रकारों में संहितापाठ से पदपाठ प्राचीनतम है। ऐतरेयारण्यक, में पदपाठ मिलता है, उसके बाद ऐतरेयारण्यक से ऋक्प्रातिशाख्य से और निरुक्त से पदपाठ प्राचीन है। विकृतिपाठों में जटा और दण्ड प्रकृष्ट है, शेष पाठों का उद्भव शिखापाठ और जटापाठ के अनुसार है। माला-लेखा-रथ-ध्वज पाठों का दण्डपाठ से उत्पत्ति होती है। घनपाठ की उत्पत्ति जटा और दण्डपाठ दोनों से है। अब हम सभी प्रकृति-विकृति पाठों को लक्षणमुख से और दृष्टान्तमुख से जानेंगे। ऋग्वेद की आदि ऋचा को ही हम दृष्टान्त के रूप में लेते है। आदिम ऋचा को हम सब जानते है-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधतमम्॥ (ऋ.म.1.1.1)॥ इति

पाठगत प्रश्न

223. विकृति पाठ के कितने भेद है ?

224. व्याडी मुनि का ग्रन्थ कौन सा है ?

225. घन पाठ किससे उत्पन्न होता है ?

226. ऋग्वेद का आदि सूक्त कौन सा है ?

227. अग्निसूक्त की एक ऋचा लिखो।

2.2.1 संहिता पाठ

वेद में संहिता भाग में जैसा लिखित है, वैसा ही पाठ होता है वह संहिता पाठ है। संहिता पाठ - संहिता की यथावत् स्थित ऋचाओं का तथावत पाठ संहिता पाठ। विसंहितव्यस्तपद पाठ पदपाठ है। यथा

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधतमम्॥ (ऋ.म.1.1.1)॥इति

2.2.2 पद पाठ

एक मन्त्र के प्रत्येक पदों का स्वतन्त्र पूर्वक तथा समास का विभाजन करके जो पाठ होता है वह पदपाठ है। प्रकृत की ऋचाओं का पाठ पदपाठ है -

अग्निम्। ईडे। पुरः ऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्।
होतारम्। रत्न ऽधतमम्।इति॥

इस पदपाठ में पुरोहितम् तथा रत्नधातमम् इन दो स्थान पर अवग्रह से समास का व्यस्त किया गया है। शाकल्य ऋषि छः ऋचाओं को छोडकर अन्य ऋचा को पदपाठ में रचा, अतः इसका शाकल्यसंहिता नाम भी है। वे छः ऋचाएं क्यों छोड़ी इसका कारण नही पता। मूल संहिता में वे ऋचाएं नहीं है, कुछ ऐसा भी मानते है।

2.2.3 क्रम पाठ

क्रमपाठ में एक ऋचा में दो पदों को एक बार ग्रहण करते है, तथा आदि और अन्तिम को छोडकर मध्यस्थ पदों को दोबार पढ़ते है।

अग्निम् ईळे। इळे पुरोहितम्। पुरोहितं यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम्। देवम् ऋत्विजम्। ऋत्विजम् होतारम्।
होतारम् रत्नधतमम् ।।इति।।

यहां आदि पद अग्निं तथा अन्तिम रत्नधातमम् को छोडकर अन्य पद दो वार पढ़े गये है। इस पाठ से मध्यस्थ पदों की प्रक्षिप्तत्व शङ्का निरस्त हो जाती है, परन्तु आदिम और अन्तिम में विकार सम्भावना रह ही जाती है। ये शङ्का जटापाठ से निरस्त हो जाती है। आङ्गल भाषा में क्रमपाठ भी कहा जाता है।

2.2.4 जटा पाठ

वस्त्र वयन के आतान प्रतान को छोडकर प्रथम और अन्तिम पदों को तीन करके मध्यस्थ षोढोच्चारण जिस पाठ में होता है वह जटापाठ होता है। जैसे वस्त्रवयन में ओतप्रोतत्व दिखता है वैसे ही जटापाठ में पद प्राय: ओत-प्रोतरूप में होते है। अत: कुछ जटा पाठ भी कहते है। यहां आदि और अन्तिम तीन बार तथा मध्यस्थ वर्णो को छ: बार उच्चारण करते है। यथा-

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे।
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे ईळे पुरोहितम्।
पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम् देवम् यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्.........।।इत्यादिवत्।।

2.2.5 माला पाठ

पहले पहला दूसरा पद का, उसके बाद छठे पांचवे पद का, फिर दूसरे तीसरे पद का फिर पांचवे चौर्शपद का पाठ माला पाठ कहलाता है। आङ्गल में यह पाठ माला पाठ भी कहलाता है। इसके पाठ की रीति सुकठिन है। पांच प्रकार के पुष्प का संगृह करके एक सूत्र में बाधते है तो उसके शोभा वर्धन के लिए क्रम अवश्य पता होना चाहिए उसी प्रकार कुछ पदों को ग्रहण कर क्रमश: पाठ इसकी रीति होता है। यथा-

अग्निम् ईळे ऋत्विजं देवम्।
ईळे पुरोहितं देवं यज्ञस्य पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम्।
देवम् ऋत्विजम् ईळे अग्निम्।। इत्यादिवत्।।

इस पाठ के विषय में एक श्लोक-

माला मालेव पुष्पाणां पदानां ग्रन्थिनी हि सा।
आवर्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रम-व्युत्क्रम-संक्रमाः।।इत्यादिवत्।।

2.2.6 रेखा पाठ

क्रम पाठ में भी यथा क्रम और व्युत्क्रम से कुछ पद द्वन्द्व के, कुछ पद त्रय के पाठ होते है क्रम पाठ के विपरीत यह होता है। यथा-

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे
ईळे पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् ईळे
ईळे पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य....।इत्यादिवत्।।

रेखापाठ के विषय में यह श्लोक कहा गया है -

क्रमाद् द्वित्रिचतुःपञ्च्पदक्रममुदाहरेत्।
पृथक् पृथक् विपर्यस्य रेखामाहुः पुनः क्रमात्।।

2.2.7 शिखा पाठ

जटा के अनुरूप होता है शिखापाठ। मध्य मध्य में या तीसरे में, छठे में, नवें चरण में तीन तीन चरण होते है। यह प्रायः जटापाठवत् होता है। यथा-

अग्निम् ईळे। ईळे अग्निम्। अग्निम् ईळे पुरोहितम्।
ईळे पुरोहितम्। पुरोहितम् ईळे। ईळे पुरोहितम् यज्ञस्य।
पुरोहितम् यज्ञस्य। यज्ञस्य पुरोहितम्। पुरोहितम् यज्ञस्य देवम्।
यज्ञस्य देवम्। देवम् यज्ञस्य। यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्।।

2.2.8 ध्वज पाठ

क्रम पाठ के अनुरूप छः पदों को उच्चारण कर व्युत्क्रम से उसकी पुनः आवृत्ति ध्वज पाठ में होती है। यहां क्रमपाठवत् छः पद होते है, पुनः विपरीत क्रम में छः पदों का ही पाठ होता है यथा

अग्निम् ईळे ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
पुरोहितम् यज्ञस्य ईळे पुरोहितम् अग्निम् ईळे।
यज्ञस्य देवम् देवम् ऋत्विजम् ऋत्विजम् होतारम्।
ऋत्विजम् होतारम् देवम् ऋत्विजम् यज्ञस्य देवम्।।

टिप्पणी

2.2.9 दण्ड पाठ

क्रम पाठ के अनुरूप से एक ही काल में दो पद का यथाक्रम त्रिकृत्व उच्चारण और, दूसरे बार विपरीत क्रम में जहां पाठ दिखता है वह दण्ड पाठ है। यहाँ क्रम पाठ के दो पद आदि में यथाक्रम तीन वार और, तदनन्तर विपरीत क्रम से पाठ है। यथा

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे अग्निम्।।इत्यादिवत।।

दण्ड पाठ के लक्षणश्लोक इस प्रकार है –

क्रममुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तमम्।
अर्धर्चादेव मुक्तोयं क्रमदण्डोऽभिधीयते।।

2.2.1 रथ पाठ

क्रम पाठ के और उसके विपरीत मिश्रण से रथ पाठ होता है। एक चरण के एक पाद या सम्पूर्ण चरण एक काल में मिलाकर यहां बोला जाता है। क्रम पाठ धारा तथा तद्विपरीत धारा को देखकर रथपाठ की पङ्क्ति में एकांश समग्र पङ्क्ति के आधार पर सृष्टी हुई।

प्रथम प्रकार–

समिधाग्निम् अग्निम् समिधा।
घृतैर्बोधायेत् बोधयेत् घृतैः समिधा अग्निम्।इति।।

द्वितीय प्रकार–

अग्निम् ईळे यज्ञस्य देवम।
ईळे अग्निम् देवम् यज्ञस्य।
अग्निम् ईळे ईळे पुरोहितम।
यज्ञस्य देवम् देवम् ऋत्विजम्।।इत्यादिवत्।।

2.2.2 घन पाठ

यहां पर भी प्रारम्भ के चार पदों के दो दो भाग को लेकर जटा पाठानुसार पढ़ते है। और उसके बाद तीन करके यथा क्रम व्युत्क्रम और विपर्यास से पढ़ते है। यहां चारों पदों में आदि के दो पदों में जटापाठवत्, उसके बाद पद त्रय यथा क्रम विपरीत क्रम और विपर्यास से उच्चारण करते है तब वह घनपाठ है।

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे पुरोहितम्
पुरोहितम् ईळे अग्निम्, अग्निम् ईळे पुरोहितम्...इत्यादिवत्॥

यहां उल्लिखित ग्यारह पाठ निर्भुज-प्रतृण भेद से द्विध विभक्त है। संहिता भाग में जैसे मन्त्र है उसके अनुरूप जो पाठ है वह निर्भुज पाठ है जैसे संहिता पाठ है। व्यतिक्रम से जो पाठ है वह प्रतृण पाठ है, जैसे पद-क्रम-जटादि।

इन पद क्रमादी पाठों के फलश्रुति और प्रशंसा शिक्षा ग्रन्थ में दिखाई देता है। याज्ञवल्क्यशिक्षा में कुछ श्लोकों में इनकी प्रशस्ति विहित है-

संहिता नयते सूर्यपदं च शशिनः पदम्।
क्रमश्च नयते सूक्ष्मं यत्तत्पदमनामयम्॥
कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती।
क्रमेनावर्तते गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा॥
यथा महादं प्राप्य क्षिप्तो लोष्ट्रो विनश्यति।
एवं दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृत्ति मज्जति॥

संहिता पाठ से सूर्य लोक, पदपाठ से चन्द्र लोक तथा क्रम पाठ से अक्षय लोक प्राप्त होता है। संहिता पाठ कालिन्दी स्वरूप या यमुना स्वरूप, पद पाठ सरस्वती स्वरूप, तथा क्रमपाठ गङ्गा स्वरूप होता है। संहितादि पाठ पूर्वक वेद पढ़ते है तो समस्त पापों का नाश होता है।

2.3 ऋषि छन्द देवता विनियोग

प्रतिवेद, प्रतिसूक्त और प्रतिमन्त्र में ऋषि छन्द और देवता विनियोग होता है। केवल मन्त्रार्थ ज्ञान ही हमारा उद्देश्य नहीं, अपितु ऋषि छन्द देवता आदि का ज्ञान भी आवश्यक है। कोई यदि वेद मन्त्रार्थ मात्र का अध्ययन करता है और सिखाता है, तब वह मन्त्र कण्टक है ऐसा कहा जाता है -

ऋषिच्छन्दोदैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।
अविदित्वा प्रयुजानो मन्त्रकण्टक उच्यते।।इति॥

कोई भी गुरु यदी ऋषि छन्द देवता विनियोग न जानकर शिष्यों को पढाता है, वह पाप भागी होता है। कहा भी गया है -

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।।इति॥

2.3.1 ऋषि

ऋष्-धातु से इन् प्रत्यय करने पर ऋषि शब्द निष्पन्न हुआ। ऋष्-धातु गमन अर्थ में है। और भी यास्क ने - **'यदेतान् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भुः अभ्यनार्यत तदृषयो भवन् तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।'** इति। स्वयम्भु ब्रह्म स्वय ही ऋषियों के समक्ष गये इसीलिए उसका ऋषित्व ऐसा अर्थ है। कुछ दर्शनार्थक ऋष्-धातु से ऋषि शब्द निष्पन्न मानते है। उनका अभिप्राय- तपस्या करने वाले ऋषियों ने ब्रह्मा के आशीर्वाद से वेदमन्त्रों का दर्शन किया इसीलिये वो ऋषि कहलाते हैं। अतः यास्क ने कहा है - 'ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्श इति औपमन्यवः' इति। यास्क दर्शनार्थक ऋष्-धातु से मानते है तथाहि - **'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः'** इति। मन्त्र दर्शन और मन्त्ररचयिता के मध्य में क्या अन्तर है इसका प्रतिपादन करते हुए यास्क द्वारा अनेक मत प्रदर्शित किये। वेद अपौरुषेय है, वेद किसी के द्वारा नहीं रचित है। मीमांसक भी स्वीकार करते है की पुरुष द्वारा बनाई वस्तु का नाश निश्चित है, वेद अपौरुषेय अनादि और अनन्त है पुरुष कर्तृकत्व अभाव से ऋषियों के तप के फल से ही ब्रह्मा के आशीष से वेद उनके हृदय में स्वतः ही उत्पन्न हुए। इसप्रकार जिस ऋषि के हृदय में जो मन्त्र, सूक्त, क्षेत्र विशेष से उत्पन्न हुआ वह उस मन्त्र का द्रष्टा हुआ। यथा ऋग्वेद के आदिमसूक्त के द्रष्टा मधुच्छन्दा ऋषि है। इसीप्रकार ऋग्वेद के गृत्स मद-विश्वामित्रा-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वसिष्ठ-कण्व ऋषि हुए है। युगान्त कल्पारम्भ में ऋषि द्वारा वेद तप से प्राप्त होते है। इस विषय में कहा गया है -

युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा।।इति।।

पाठगत प्रश्न

228. मन्त्रा कण्टक किसको कहा जाता है ?

229. ऋषि शब्द की उत्पत्ति किससे हुई ?

230. कौन ऋषि कहलाता है ?

231. ऋग्वेद के ऋषि कौन है ?

2.3.2 देवता

प्रत्येक मन्त्र का कोई देवता अवश्य है। उस-उस मन्त्र से उन-उन देवों को प्रसन्न और आवाह्न किया जाता है। देवता, देव, देवी इत्यादि शब्द प्रकाशार्थक दिव्-धातु से निष्पन्न है। जो स्वयं प्रकाशित होते हैं वे देव हैं। निरुक्त में यास्क ने देव शब्द के निर्वचन

प्रसङ्ग में कहा है –'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा भवति' इति। इसका अर्थ जो दाता, स्वयंप्रकाश, स्वतेज से अन्य का भी प्रकाशक है वह देव है। इस प्रकार मन्त्र के चैतन्य में ही देव है। क्योंकि चैतन्य स्वयं प्रकाशित है। चैतन्याभास से ही अन्यवस्तु प्रकाशित होती है। अत: सच्चिदा नन्द स्वरूप आत्मचौतन्य ही देवता है ऐसा विद्वान मानते है। ऋग्वेद में भी उल्लेख है –

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु: इति॥

जैसे एक ही वायु के अग्नि-यम-मातरिश्वा आदि नाम होते है, वैसे ही एक ही ब्रह्म के भिन्न नाम विद्वानों द्वारा कहे जाते हैं। वेद में बहुत देवों के नाम प्राप्त होते है। यास्क ने तो अग्नि-इन्द्र-सूर्य इन्हीं को देवस्वीकार किया। इस विषय में पूर्व में ही विस्तार से निरूपण किया है। तीनों देवों से ही देवों की उत्पत्ति हुई, और कहा भी है- **'तासामेव भक्तिसाहचर्याद् बहूनि नामधोयानि भवन्ति कर्मपृथक्त्वाद्वा'। इति।**

पाठगत प्रश्न

232. यास्क ने देवता निर्वचन प्रसङ्ग में क्या कहा?

233. एकं सद्विप्रा: कं बहुधा वदन्ति?

234. यास्क ने कितने देव स्वीकार किये है और वे कौन से है ?

2.3.3 छन्द

निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थ में छन्द शब्द की बहुत व्याख्याएं प्राप्त होती हैं। जो पाप का आच्छादन करता है वह छन्द है। तैत्तिरीय संहिता में छन्द की उत्पत्ति के विषय में ये आख्यायिका प्राप्त होती है कि पहले प्रजापति ने अग्नि को बनाया, वह अग्नि भीषण रूप धारण कर देवों को जलाने जाती है। उसके बाद स्वयं की रक्षा के लिए छन्द शरीर द्वारा देव अग्नि के समीप गये। इस प्रकार कुछ लोग छन्द की उत्पत्ति मानते है। और अन्य ऋषियों के सामने आविर्भूत मन्त्र के स्पन्द से ऋषियों ने जो अनुभूत किया, वह ही छन्द कहलाता है।

वेद में सात प्रधान छन्द है। वे छन्द गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पङ्क्ती-त्रिष्टुभ्-जगती। वैदिकछन्द को अक्षरच्छन्द नाम से भी जाना जाता है। सप्त छन्दों के अक्षर बताते है-

1) गायत्री-24

2) उष्णिक्-28

3) अनुष्टुप्-32

4) बृहती-39

5) पङ्क्ती-40

6) त्रिष्टुप्-44

7) जगती-48

छन्द बद्ध मन्त्रों के चार पद होते हैं, प्रत्येक पाद में समान संख्या के अक्षर होते हैं। जैसे अनुष्टु आदि चारों पादों में मिलाकर 32 अक्षर होते हैं। इस प्रकार एक पाद में 8 अक्षर होते है। ऐसे ही अन्य में भी जानने चाहिए। द्विजातियों द्वारा गायत्री मन्त्र नित्य उच्चारित होती है। गायत्री छन्द में यह मन्त्र लिखित है। परन्तु गायत्री मन्त्र में 24 चौबिस अक्षर होने चाहिए परन्तु है तेईस 23, अतः यह अनियम पिङ्गलर्षि ने समाधान प्रस्तुत किया कि - तत्सवितुर्वरेण्यम् यहाँ वरेण्यम् इस स्थान पर वरेणिअम् ऐसा पढना चाहिए। ऋग्वेद में त्रिष्टुप्छन्द अधिक् प्राप्त होता है। अग्नि के मन्त्र गायत्री में, और इन्द्र के त्रिष्टुप में है। ऋग्वेद का आदिसूक्त अग्निसूक्त गायत्री छन्द में है। अग्निमीळे पुरोहित यहां पर चौबिस (24) अक्षर हैं।

पाठगत प्रश्न

235. कौन से प्रधान छन्द हैं ?

236. द्विजातियों से नित्य उच्चारित गायत्री मन्त्र में कितने अक्षर है ?

237. गायत्री मन्त्र लिखो।

2.3.4 विनियोग

यज्ञकर्म में मन्त्र के प्रयोग स्थान को विनियोग कहते है। विशेषरूप से प्रयोग का अर्थ विनियोग है। **'अनेन इदं तु कर्तव्यं विनियोगः प्रकीर्तितः, अस्मिन् यज्ञकर्मणि अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः कर्तव्यः इतिविनियोगः।** किस याग में कौन सा मन्त्र प्रयोग करना है उसका विधान सौत्र सूत्र में है। सायाणाचार्य ने अपने भाष्य में सौत्र सूत्र से उद्धृति पूर्वक प्रतिमन्त्र के विनियोग को प्रदर्शित किया है। सामान्य और विशेष भेद से विनियोग दो प्रकार का है - समग्रसंहिता-पारायण में विनियोग सामान्य विनियोग कहलाता है। प्रति सूक्तनुसार मन्त्र के आश्वालयन प्रदर्शित विनियोग विशेष विनियोग कहलाते हैं। सूक्तानुसार या सूक्तान्तर्गत मन्त्रानुसार विनियोग भिन्न होता है। जैसे ऋक्संहिता के प्रथम मण्डल एक सौ पन्द्रहवाँ 115 सूक्त सूर्यदेव को उद्देश्य करके कहा गया है। 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' ये प्रथम ऋचा का प्रथम चरण है। सायणाचार्य ने कहा है कि आश्विन शास्त्र में सूर्योदय से ऊपर सौर्य सूक्त प्रशंसनीय है वहां यह सूक्त प्रशंसनीय है। सूक्त कहता है कि 'चित्रं

देवानां नमो मित्रस्य'। सोमयाग में सोमयाग निष्कासन पक्रिया को स्तुत्यादि द्वारा कहा जाता है। उसके पूर्ववर्ति दिन में रात्रि भाग के अन्तिमांश में उषस् अग्नि अश्विनी के युगल त्रय देवताओं की स्तुति होती है। ये स्तुति प्रातरनुवाक नाम से जानी जाती है। गीत रहित स्तुति शस्त्राम कहा जाता है। सोम याग के सप्त 7 संस्था है। अनुष्ठान के प्रकार विशेष संस्था कहलाते हैं। यथा क्रम से सप्त संस्था (अग्निष्टोम, अत्याग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय अतिरात्र, और आप्तर्याम) प्रत्येक प्रक्रिया में चार शस्त्रकीर्तन होते है। त्रिविध प्रक्रिया के अनन्तर आश्विन शस्त्रकीर्तन करना चाहिए। इस आश्विन शस्त्र में उषा अग्नि और अश्विनी देवों की स्तुति होती है। पक्षियों के कूजन से पूर्व सूर्योदय से पूर्वप्रातरनुनाक की समाप्ति कर लेनी चाहिए। सूर्योदय के अनन्तर आश्विन शास्त्र में सूर्य देवता सम्बन्धित सूक्तों का संकीर्तन बताया गया है। उन्हीं में ये सूर्य सूक्त है। आश्वलायन के श्रौतसूक्त में 5-618-वें सूत्र में ये विधि लिखित है। इसके बाद सूर्य सूक्तगत- सभी ऋचाओं का विशेष विनियोग के सम्बन्ध में सायणाचार्य ने कहा है कि -**शास्त्र-आदितस्त्रिस्त्र ऋचः सौर्यस्य पाशोर्वपा पुरोडाश हविषां क्रमेणानुवाक्याः। ततो द्वे वपापुरोडाशयोर्याज्ये इति।** सूक्त की प्रथम तीन ऋचाओं को यथा क्रम में सूर्य देवता के उद्देश्य वपा पुरोडाशादि हविग्रहण समय में अनुवाक्य रुप के कहने चाहिए। अग्रि को दो ऋचाओं और चौशी व पांचवीं ऋचा को यथा क्रम में और पुरोडाशवपादि यज्ञाग्नि में हविर्दान काल में याज्य रुप में पाठ करना चाहिए। देवता के उद्देश्य में पुरोहित जब हवि का ग्रहण करता है तब कही जाने वाली ऋचा को अनुवाक्य कहते हैं। यज्ञाग्नि में आहुति के अर्पणकाल में बोली जाने वाली ऋचा याज्य कहलाती है। पहले अनुवाक्य और तदनन्तर याज्य का पाठ होना चाहिए। अनुवाक्य बैठकर और याज्या खड़े होकर पढनी चाहिए। कहा है-'अनुवाक्या तिष्टन्नाह, आसीनो याज्यां यजति' इति। हूयते इति हविः। यज्ञाग्ननि में जो दिया जाता है वह ही हवि कहलाती है। पशुमांस, पिष्टतण्डुलादि, पुरोडाश नामक रोटिका, सोमरस, घृतादि सभी हविपद के वाच्य है। इन हव्य द्रव्यों के मध्य आज्य का अधिक प्रचलन से बदलते हुए काल में हवि से घृत पद का ग्रहण होने लग गया।

पाठगत प्रश्न

238. सूर्यसूक्त का आदि मन्त्र क्या है ?

239. शस्त्र क्या है ?

240. अनुवाक्या क्या है ?

241. यज्या क्या है ?

242. हवि क्या है ?

243. हवि शब्द से किसका ग्रहण होता है ?

पाठ सार

वेद अपौरुषेय है ये भारतीय सिद्धान्त है। इससे स्पष्ट है कि वेद पहले से ही है। अत एव वेद का काल चिन्तन हास्य कल्पित होता है। वेदादियों में भ्रमादि नहीं है। अत एव वेद अपौरुषेय है अनादि काल से इसलिए वेद के विद्यमानत्व के काल पर चिन्ता सम्भव नहीं है। परन्तु पाश्चात्त्यों के मत में तो वेदों को ऋषियों ने बनाया। अत: याकोबि इत्यादि वैदेशिक पण्डित वेद के काल निर्णय में सर्वदा तत्पर रहते हैं। उनके मत में वेद पौरुषेय है। कुछ भारतीय विद्वान भी वेद के कालनिर्णय में सदा तत्पर दिखते हैं। उनमें लोकमान्य तिलक, बालकृष्ण दीक्षित इत्यादि हैं। उसके बाद वेदपाठ के प्रकार कहे गये है। कुल ग्यारह 11 पाठ है। तीन प्रकृति और आठ विकृति। संहिता पद क्रम पाठ प्राकृति है। अष्ट विकृति पाठ जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वज-दण्ड-रथ-घनपाठ है। मन्त्रादि से एक देवता को उद्दिश्य करके स्तुति की जाती है। फिर वेद के नित्य होने पर भी कोई स्मर्ता तो आवश्यक है। उसके बाद प्रतिसूक्त का कोई ऋषि, कोई देवता, और कोई छन्द भी हो इसका वर्णन किया है। यथा- अग्निसूक्त का देवता- अग्नि, ऋषि- मधुच्छन्दा, छन्द जगती है। इस प्रकार इस पाठ में ऋषि देवता छन्द विनियोग उल्लेखित है।

पाठान्त प्रश्न

244. संहितापाठ की व्याख्या करो।

245. घनपाठ की व्याख्या करो।

246. वेदपाठ कितने प्रकार का है।

247. ऋषि का स्वरूप स्पष्ट करो।

248. देवता का स्वरूप लिखो।

249. छन्द की उत्पत्ति विषय में क्या आख्यायिका है ?

250. गायत्रीमन्त्र के अक्षर विषय में पिङ्गल ने क्या कहा है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

वेदों के उत्पत्ति काल

251. भारतीय विद्वानों के मत में।

टिप्पणी

252. वेद को अपौरुषेय मानते है।

253. पाश्चात्य विद्वान यथा बुद्धि वैभव से वेद रचना काल का निर्धारण करते है।

डॉ. मैक्समूलर का मत

254. ऋग्वेद।

255. ऋग्वेद की रचना 1150 ई.पू के आस-पास हुई

256. चार युग है। छन्दोयुग, मन्त्रयुग, ब्रह्मणयुग, सूत्रयुग।

257. 3200 वर्ष हो गये।

वेद के विषय में ज्यौतिषतत्त्वआधारित मत

258. षट् ऋतु है।

259. मीन सङ्क्रान्ति काल से शुरू।

260. मीन सङ्क्रान्ति पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होती है।

261. 27 नक्षत्रों में विभक्त होते है।

262. 72 वर्ष में।

263. ईशवीय पूर्व (2500) शतक।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित का मत

264. शतपथ ब्राह्मण से।

265. वैदिक संहिताओं में।

266. पूर्वदिग्बिन्दु से थोड़ा उत्तर दिशा में।

बाल गङ्गाधर तिलक का मत

267. फाल्गुनी पूर्णिमा।

268. फाल्गुनी पूर्णिमा।

269. चौबिस साल 24।

270. अदितिकाल, मृगशिर काल, कृत्तिका काल, और अन्तिम काल ये चार काल है।

शिला लेख

271. वर्तमान के टर्की देश के अन्तर्गत खनन कार्य में प्राचीन एक शिलालेख मिला।

272. पश्चिम-एशिया विभाजन के समय में वहां टर्की देश में दो कोई प्राचीन जातियों का निवास स्थान था।

273. 'हित्तिति' और 'मितानि'।

274. ईश्वी पूर्व (1907) शतक।

275. ईश्वी पूर्व (2000) शतक।

वेदपाठ के प्रकार

276. अष्ट

277. जटा पटलाख्ये ग्रन्थ में

278. जटा और दण्ड दोनों से।

279. अग्निसूक्त।

280. अग्निमीते पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधतमम्।। (ऋ.म.1.1.1)।इति

ऋषि

281. ऋषि छन्द देवता आदि के ज्ञान के बिना यदि वेद मन्त्रार्थ मात्र कोई सीखता है

282. ऋष्-धातु इन् प्रत्यय ऋषि शब्द निष्पन्न है

283. तप के फल से ब्रह्म के आशिष से वेद स्वत जिनके हृदय में आविर्भूत हुए वे ऋषि है

284. गृत्समद-विश्वामित्रा-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वसिष्ठ-कण्व ऋषि हुए।

देवता

285. देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा भवति इतिआत्मान्।

286. तीन 3

287. अग्नि-इन्द्र-और सूर्य

छन्द

288. (1) गायत्री-24, (2) उष्णिक्-28, (3) अनुष्टुप्-32, (4) बृहती-39, (5) पङ्क्ती-40, (6) त्रिष्टुप्-44, (7) जगती-48

289. 23

290. ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सदितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धीयो यो नः प्रचोदयात्।

विनियोग

291. चित्रं देवानामुदगादनीकम्।

टिप्पणी

292. गीत रहित स्तुति

293. देवता के उद्देश्य से पुरोहित जब हवि का ग्रहण करता है तब बोली जाने वाली ऋचा अनुवाक्या कहलाती है

294. यज्ञाग्नि में आहुति के समय बोली जाने वाली ऋचा यज्या हैब

295. यज्ञाग्नि में जो दी जाती है वह ही हवि है

296. हवि का घृत पद से ग्रहण होता है।

दूसरा अध्याय समाप्त